जब मैंने आकलन का ककहरा सीखा

कमलानंद झा

बात 1994 की है। मैंने जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से हिंदी में एमफिल करते हुए दिल्ली के एक नामी स्कूल में पढ़ाना शुरू किया था। मैं छठी कक्षा को पढ़ा रहा था। उसी कक्षा में एक लड़का अलफांसो था, जिसकी हिंदी अत्यंत खराब थी। काफी मगजमारी के बाद भी मैं कोई सुधार नहीं कर पा रहा था। उसकी लिखावट पढ़ना टेढ़ी खीर था। नतीजा यह कि वह छठी कक्षा में फेल हो गया। परिणाम घोषित होने से पहले मुझे प्रधानाचार्या का बुलावा आया। मिलते ही उन्होंने कहा, 'ये क्या किया है आपने?' और उस लड़के की कॉपी मेरे आगे बढ़ा दी। मैंने कहा, 'इसने उत्तीर्ण करने लायक कुछ लिखा ही नहीं तो फिर पास कैसे कर देता?' उनका जवाब सुनकर मैं चकित रह गया। उन्होंने कहा कि 'यहां अनुत्तीर्ण कौन हुआ, अलफांसो या आप? अगर एक वर्ष तक उसे पढ़ाने के बाद भी आप उसे इतना नहीं सिखा पाए कि वह पास कर सके तो आप अपने शिक्षण में पूरी तरह फेल हो गए।' फिर, उन्होंने मुझसे पूछा कि 'आप यह जानते हैं कि इसे गणित और चित्रांकन में कितने अंक आते रहे हैं'? मैंने ना कहा। उन्होंने कहा, 'एक अच्छा शिक्षक अपने विद्यार्थियों की सारी गतिविधियों से परिचित होता है और सारे विषयों में उसकी गति को जानता-परखता है।'

यह कहते हुए उन्होंने उसकी गणित की कॉपी मेरे आगे बढ़ा दी। मैं फिर से चौंक पड़ा। उसे गणित में 100 में 100 अंक मिले थे। प्रधानाचार्या ने कहा, ''यह लड़का चित्रांकन में पूरी दिल्ली में सर्वश्रेष्ठ है। पिछले तीन वर्षों से वह पूरी दिल्ली में प्रथम आ रहा है। इस तरह आप एक भविष्य के महान् गणितज्ञ या पेंटर की संभावना को हमेशा के लिए खो देंगे। यह कैसे संभव है कि जो इतने खूबसूरत चित्र बना सकता है, उसकी लिखावट इतनी खराब हो। कहीं कुछ गड़बड़ है, आप इसकी पड़ताल करें। इसलिए आप इस पर महीने भर परिश्रम करें, पुनः परीक्षा लें, मुझे पूरी उम्मीद है कि आपके विशेष शिक्षण से यह उत्तीर्ण हो जाएगा।' मैं उनका निहितार्थ तो समझ ही गया और समझा आकलन या मूल्यांकन का पहला पाठ।

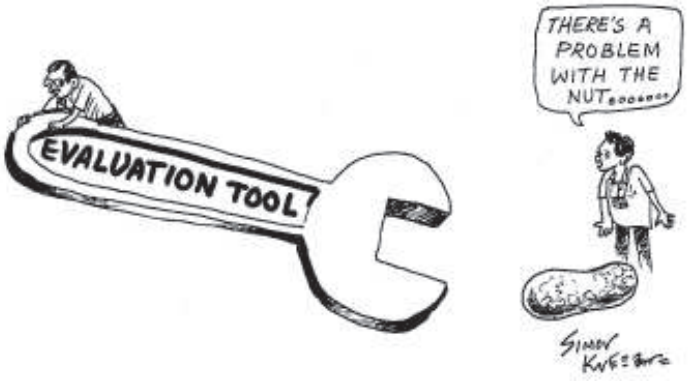

कहने की आवश्यकता नहीं कि उस समय राष्ट्रीय पाठ्यचर्या-2005 का नामोनिशान नहीं था, जिसने आकलन का एक अलग नजरिया पेश किया है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या-2005 सुझाती है, 'एक अच्छी मूल्यांकन और परीक्षा पद्धति सीखने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग बन सकती है जिसमें शिक्षार्थी और शिक्षा तंत्र दोनों को ही विवेचनात्मक और आलोचनात्मक फीडबैक से फायदा हो सकता है।' अगर अलफांसो पर अतिरिक्त मेहनत करने से उसके गणितज्ञ या सफल चित्रकार बनने में हम शिक्षक उसकी मदद कर सकते हैं तो जरूर मदद करनी चाहिए। प्रधानाचार्या का निहितार्थ यही था। हालांकि, आज भी अधिकांश शिक्षक-शिक्षिका 'कड़ाई' से मूल्यांकन करने को महिमामंडित करते हैं। समझने की बात यह है कि उनकी इस 'कड़ाई' में न जाने कितने बच्चों का भविष्य अंधकारमय हो जाता है।

शायद, ऐसे ही 'कड़क' शिक्षकों और शिक्षिकाओं को बारबियाना स्कूल के आठ 'फेल' छात्रों ने पत्र लिखा था। इस चिट्ठी ने दुनिया भर के लोगों को ध्यान अपनी ओर खींचा। खेतों में काम करने वाले आठ इतालवी लड़कों की यह लंबी चिट्ठी शिक्षा के साहित्य में महत्त्वपूर्ण है (अध्यापक के नाम पत्रः बारबियाना स्कूल के छात्र, ग्रंथशिल्पी, नई दिल्ली, 1996)। पत्र के आरंभ में ही छात्रों ने लिखा, ''आप मुझे या मेरे नाम को भूल गई होंगी। आपने मेरे जैसे न जाने कितनों को फेल किया है। हालांकि, मैं अक्सर आपको और दूसरी अध्यापिकाओं को, उस संस्था को जिसे आप स्कूल के नाम से पुकारते हैं, और उन लड़कों को जिन्हें आप फेल करती हैं, याद करता हूं। आप फेल करके हम लोगों को सीधे खेतों या फैक्ट्रियों में धकेल कर बिलकुल भूल जाती हैं।'' (वही, पृ. 5)

इसी चिट्ठी की प्रस्तावना में कृष्ण कुमार हमें बताते हैं कि अगर इसके सारे नाम और स्रोत भारतीय कर दिए जाएं, तो भी बात वही रहेगी, कोई अंतर नहीं होगा। सच तो यह है, किसी भी विद्यार्थी का मूल्यांकन करते हुए न तो उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक और पारिवारिक पृष्ठभूमि को नजरअंदाज किया जा सकता है और न ही उसके निजी वैशिष्टय को। एक शिक्षक को इस धारणा में पूरी आस्था रखनी चाहिए कि सभी बच्चे सीख सकते हैं, यदि उन्हें अपनी गति से सीखने दिया जाए और सीखने के अपने ही तरीकों का अनुसरण करने दिया जाए।

नई दिल्ली स्थित एक स्कूल में साक्षात्कार में हास्य के साथ मुझसे पूछा गया, 'मुझे ऐसा हिंदी शिक्षक चाहिए जो मेरे बच्चे को सीबीएसई की बोर्ड परीक्षा में हिंदी में 90 फीसदी अंक दिला सके। क्या आप मेरे बच्चे को इतने अंक दिला पाएंगे?' मैंने कहा, 'नहीं, कदापि नहीं।' जब उन्होंने मेरे 'नहीं' का कारण जानना चाहा तो मेरे मुंह से अचानक निकल गया, ''जब तक बूढ़े-पुराने लोग आकलन या मूल्यांकन में रहेंगे, तब तक मैं हिंदी में इतने अंक नहीं दिला सकता।' रोचक तथ्य यह है कि उस साक्षात्कार में विशेषज्ञ के रूप में हिन्दी के एक सम्मानित शिक्षक उपस्थित थे, जो अत्यंत उम्रदराज थे। मेरी नजर उन पर नहीं गई थी। बात तो अब मुंह से निकल चुकी थी। रोषमय स्वर में उन्होंने पूछा कि 'बूढे-पुराने लोगों का हिंदी आकलन से क्या संबंध?' मैंने संयत स्वर में कहा कि जब तक आकलन या मूल्यांकन की परंपरागत अवधारणा बनी रहेगी, तब तक हिंदी में अच्छे अंक नहीं आ सकते।

परंपरागत अवधारणा में यह बात बद्धमूल है कि साहित्य में अधिक अंक इसलिए नहीं दिए जाते क्योंकि विज्ञान या गणित की तरह साहित्य का उत्तर निश्चित नहीं होता। उनके उत्तर विषयनिष्ठ हो सकते हैं। इसीलिए विज्ञान जैसे विषयों में तो अधिकतम अंक दिए जा सकते हैं, किंतु हिंदी में नहीं। भाषा में श्रेष्ठता या गुणवत्ता की कोई सीमा नहीं होती। मेरा आग्रह यह था कि भले ही उत्तर की गुणवत्ता की कोई सीमा न हो, किंतु कक्षा विशेष के बच्चों के लिखने की गुणवत्ता की सीमा तो निर्धारित की ही जा सकती है। दसवी-बारहवीं कक्षा के बच्चों की गुणवत्ता का

पैमाना नामवर सिंह को बनाने की क्या आवश्यकता है? दूसरी बात यह कि हिंदी आकलन की पारंपरिक अवधारणा में प्रश्न विशेष का आकलन अलग-अलग खंडों में नहीं किया जाता, जैसे अन्य विषयों में सामान्यतया किया जाता रहा है। अगर 10 अंकों का प्रश्नोत्तर है तो उसकी लिखावट, शुद्धता और विषय-वस्तु का गोलमटोल आकलन कर एक बारगी अंक दे दिए जाने का रिवाज है। लिखावट पर कितने, शुद्धता पर कितने तथा विषयवस्तु पर कितने अंक दिए जाएं, इसका कोई पैमाना निर्धारित नहीं है। इस विभाजन में रचनात्मकता की कोई गुंजाइश शायद ही हो पाती है।

प्रश्नोत्तर रचनात्मक, सही समझ और विषयवस्तु की दृष्टि से ठीक होने पर भी यदि कॉपी में अधिक अशुद्धियां नजर आती हैं तो परीक्षक पूरी कॉपी को रंगीन कर उसमें मामूली अंक दे देते हैं या उसे फेल कर देते हैं। अधिकतर शिक्षक आकलन में लाल स्याही इस्तेमाल करते हैं। लाल स्याही से आकलन करने में बच्चों की अशुद्धियां ही रेखांकित होती हैं और बच्चे हीनताग्रंथि के शिकार हो जाते हैं।

क्यों करें आकलन

सही आकलन के लिए आकलन का उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए। सामान्यतया आकलन का उद्देश्य विद्यार्थी का अगली कक्षा में जाना, विद्यार्थियों की प्रगति तथा फेल-पास को माना जाता है। मूल्यांकन का यह मुख्य उद्देश्य है ही नहीं। आकलन सीखने की प्रक्रिया का ही एक अभिन्न हिस्सा है। आकलन का उद्देश्य अवधि विशेष में बच्चे की प्रगति और उसमें आने वाले परिवर्तनों को लक्षित करना तथा बच्चे की सीखने की विशेष जरूरतों को पहचानना है। इसके अतिरिक्त अधिक उपयुक्त तरीकों के आधार पर अध्यापन और सीखने की स्थितियों की योजना बनाना है।

कोई छात्र या छात्रा क्या कर सकती है और क्या नहीं, उसकी किन-किन चीजों में विशेष रुचि है, वह क्या करना चाहती है और क्या नहीं, इन सबके प्रति समझ बनाने में उनकी मदद करने के लिए आकलन किया जाना चाहिए। (आकलन स्रोत पुस्तिका-एनसीईआरटी-2009, पृ. 7) इस प्रकार यह बहुत आवश्यक हो जाता है कि विद्यालय और कक्षा के बाहर और भीतर होने वाली सभी गतिविधियों, जिसमें बच्चे की भागीदारी रहती है, का आकलन किया जाना चाहिए। यह आकलन की सारगर्भित प्रक्रिया होगी। आकलन की प्रक्रिया को सूचना और फीडबैक देने का जरिया बनाना होगा कि विद्यालय और अध्यापक शिक्षा देने की प्रक्रिया में किस सीमा तक सफल हो पाए हैं।

शिक्षकों को आकलन के अलग-अलग तरीके सोचने की आवश्यकता है। बच्चे स्वयं भी अपना आकलन करते चलते हैं। उनके इस आकलन का सम्मान करना चाहिए और उनकी इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना चाहिए। विद्यार्थियों से कहा जा सकता है कि वे अपना सर्वोत्तम कामों का चयन करें और उन्हें क्रम से लगाएं। उस क्रम के अनुसार उसमें अंक दें। कभी-कभी लिखित कार्यों की जांच उसे स्वयं करने दें। उन्हें निर्देशित करें कि वे अपनी गलतियां स्वयं ढूंढ़े। शिक्षक और स्वयं के सिवाय कक्षा के बच्चे भी एक-दूसरे का आकलन कर सकते हैं, वैसे भी अनौपचारिक रूप से वे एक-दूसरे का आकलन करते ही रहते हैं। संभवतः इससे बच्चों को आपस में सीखने के मौके भी मिलें। इससे उनमें गहरे आत्म-विश्वास और अद्‌भुत जिम्मेदारी का अहसास होगा। अपने बगल के दोस्त की कॉपी जांचते हुए, उसकी अच्छाइयों और गलतियों को वह निकट से देख सकता है और बहुत कुछ सीख सकता है। सामूहिक गतिविधि के द्वारा आकलन करना बहुत लाभदायी सिद्ध होता है।

आकलन में इस बात का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है कि प्रत्येक बच्चा अपने-आपमें अद्वितीय होता है और प्रत्येक स्थिति में अपने ढंग से ही प्रतिक्रिया करता है। शायद, इसीलिए बच्चों का आकलन करते समय यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि हम उनमें पाई जाने वाली भिन्नताओं को पहचान सकें और इस सच्चाई को भी स्वीकार करें कि सीखने के दौरान भिन्न तरीके से प्रतिक्रिया करते और समझते हैं। आकलन का मकसद प्रत्येक बच्चे को जो वह हो सकता है, उसकी संभावना की शिनाख्त करना होना चाहिए।

आकलन का भूत

जिन शिक्षाविदों ने स्कूल और आकलन विहीन समाज की कल्पना की है, वे इसके विकल्प क्या देते रहे हैं, कहना मुश्किल है। हालांकि, इतना तो तय है कि स्कूल में प्रचलित आकलन पद्धतियां बच्चों को पढ़ने से विमुख करती हैं। बच्चों को स्कूल में प्रवेश लेते ही पता चल जाता है कि स्कूल में सबसे महत्त्वपूर्ण बात है- परीक्षा पास करना। कुछ ही दिन में उसका इस कड़वी सच्चाई से साक्षात्कार हो जाता है कि उन्हें जो कुछ पढ़ाया-सिखाया जाएगा, उसकी जांच होगी। यानी, जांच का नतीजा ही उनकी योग्यता का पैमाना माना जाएगा। इसलिए, आकलन बच्चों में डर, भय और आतंक का पर्याय बनकर आता है।

इस संदर्भ में मेरा पीड़ादायक अनुभव रहा है। उन दिनों सातवीं कक्षा की एनसीईआरटी की हिंदी पाठ्यपुस्तक में एक पाठ हुआ करता था-नचिकेता। नचिकेता अत्यंत जिज्ञासु बालक था। उसके मन में कई प्रश्न उमड़ते-घुमडते रहते थे। 'मैं कौन हूं, कहां से आया हूं, मृत्यु के बाद मेरा क्या होगा?' आदि-आदि। यमराज उससे तीन वरदान मांगने को कहते हैं। वार्षिक परीक्षा में मैंने एक नितांत असंभावित प्रश्न दिया, 'नचिकेता की जगह अगर तुम होते तो यमराज से कौन-कौनसे तीन वरदान मांगते?' बच्चों के सहज, सरल उत्तर भारतीय शिक्षा व्यवस्था की सारी असलियत को सामने रख देते हैं।

एक बच्चा, वरदान मांगता है, ''मैं अपने इम्तहान में अच्छे अंकों से पास होऊं, ताकि माता-पिता की मार नहीं खानी पड़े।'' दूसरा, अपने माता-पिता का नाम रोशन करने के लिए अच्छे अंक लाना चाहती है, ''दूसरा वरदान मैं अपने लिए मांगूंगी कि पढ़ाई में अच्छी बुद्धि दे ताकि मैं अपने माता-पिता का नाम रोशन कर सकूं।'' एक अन्य बच्चा कहता है, ''दूसरा वरदान मैं यह मांगता कि कभी अनुत्तीर्ण न होऊं और ईश्वर के प्रताप से अच्छे अंक लेकर उत्तीर्ण होता रहूं, क्योंकि उसी से माता-पिता, मित्रों एवं सगे संबंधियों के बीच मेरी इज्जत बनी रहेगी।'' अधिकांश बच्चों ने यमराज से दूसरे नंबर पर इसी तरह का वरदान मांगा। इसी से हमारी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का कड़वा सच सामने आ जाता है।

हमारे यहां बच्चे अपने-आपको पाठ्यक्रम के अतिरिक्त बोझ से इतना दबे हुए महसूस करते हैं कि यमराज से इस बोझ को कम कर देने की कामना करते हैं। आजकल स्कूलों में प्रत्येक दस दिन पर क्लास टेस्ट, पंद्रह दिन पर साइकल टेस्ट और प्रत्येक महीने स्पेशल असाइनमेंट टेस्ट आदि से वे परेशान हो जाते हैं। ये सारी परीक्षाएं मूल्यांकन की नई पद्धति सतत मूल्यांकन के अंतर्गत की जाती हैं। सतत मूल्यांकन का दार्शनिक आधार यह था कि बच्चों पर मूल्यांकन का हौव्वा खड़ा न हो। परिणाम इसके उलट नजर आ रहा है। स्कूल की व्यवस्था तथा अभिभावक की अकूत आकांक्षा ने इस सतत मूल्यांकन को भी पारंपरिक परीक्षा के चरित्र में ढाल दिया है। ◆

लेखक परिचयः कमलानंद झा दक्षिण बिहार के केन्द्रीय विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के विभागाध्यक्ष हैं। हिन्दी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लगातार लिखते रहते हैं। शिक्षा में गहरी रुचि है। ग्रन्थशिल्पी प्रकाशन से 'पाठ्यपुस्तकों की राजनीति' पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है।